तथाकथित हरिवंसचरियंकी विमलसूरिकर्तृता : एक प्रश्न

(स्व०) डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी

इस शताब्दीके प्रारम्भमें विमलसूरि कृत प्राकृत पौराणिक महाकाव्य पउमचरियंका सम्पादन प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् हर्मन याकोबीने किया था जिसका प्रकाशन सन् १९१४ में भावनगरसे हुआ था। तबसे लगभग २८ वर्षोंके बाद उक्त कृति और रविषेणके संस्कृत पद्मचरित (पद्मपुराण)के बीच तुलनात्मक अध्ययनके फल प्रकाशमें आये। सन् १९४२ की अनेकान्त पत्रिका, वर्ष ५ के अंक १–२ में स्व० पं० नाथूराम प्रेमीने "पद्मचरितं और पउमचरियं" लेख तथा उक्त वर्षके १०–११वें अंकोंमें पं० परमानन्द शास्त्रीने 'पउमचरियंका अन्तःपरीक्षण' नामक लेख लिखे। प्रेमीजीने अपने उक्त लेखको सन् १९४२ में प्रकाशित अपनी कृति 'जैन साहित्य और इतिहास'में भी प्रकाशित किया। इन लेखोंमें पउमचरियं और पद्मचरितके बीच साम्य और वैषम्यपर ऊहापोह किया गया है। परन्तु विमलसूरिने कोई और ग्रन्थ लिखे थे उसपर प्रकाश नहीं डाला गया। "जैन साहित्य और इतिहास"के प्रथम संस्करण (१९४२)में एक स्थल (पृ० ५२०) पर प्रेमीजीने प्रश्नोत्तरमालिकाके कर्त्ता किसी विमलसूरिके होनेकी सम्भावनाका खण्डन किया है पर उसी ग्रन्थके परिशिष्टमें दो छोटे पैराग्राफों द्वारा उद्योतन सूरि कृत तब अप्रकाशित कृति "कुवलयमाला" (शक सं० ७००) की प्रस्तावना गत एक गाथा—

बुहयणसहस्सदइयं हरिवंसुप्पत्तिकारयं पढमं।
वंदामि वंदियं पि हु हरिवंसं चेव विमलपयं॥

के आधारसे (उस गाथाके पाठकी बिना परीक्षा किये और उस गाथाकी स्थिति और सन्दर्भका बिना विचार किये) सम्भावना की कि बिमलसूरि कृत "हरिवंश चरियं" होना चाहिए और लिखा कि "विमलसूरिका वह हरिवंश अभी तक कहीं प्राप्त नहीं हुआ है, इसके प्राप्त होनेपर जिनसेनके हरिवंशका मूल क्या है इसपर कुछ प्रकाश पड़नेकी सम्भावना है और सम्भव है पद्मपुराणके समान वह भी विमलसूरिके हरिवंशकी छाया लेकर बनाया गया हो"।

उस समय वयोवृद्ध साहित्यिक प्रेमीजीकी उक्त सम्भावनाको किसीने चुनौती नहीं दी, बल्कि उनके अनुसरण और समर्थनमें ही सन् १९६६ तक कलमें चलती रहीं और सम्भवतः अब भी चल रही हों।

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैनने सन् १९५७ से पूर्व लिखे अपने एक लेख—"विमलार्य और पउमचरियं"[1] में और सम्भवतः उससे पूर्व लिखे अपने शोध प्रबन्ध—'Studies in the Jain sources of the History of Ancient India' में उक्त सम्भावनाकी पुष्टिके साथ कुछ वकालत की है। उनका कहना है कि "कुवलयमाला"की गाथाके अनुसार विमलार्य न केवल अपने विमलांक काव्य (पउमचरियं)के रचयिता थे, वरन् सर्वप्रथम हरिवंश पुराणके भी रचयिता थे। उक्त पउमचरियंकी प्रशस्तिके "सोऊण पुव्वगए नारायणसीरिचरियाइं" शब्दोंसे भी यही ध्वनित होता है कि विमलार्यने श्री नारायणके चरित (अर्थात् कृष्ण-

१. श्री विजय राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ पृ० ४३७–४५१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरित या हरिवंश) की रचना पउमचरियसे भी पहले कर ली थी।" वे आगे चलकर लिखते हैं कि उद्योतन सूरिके समकालीन अपभ्रंश भाषाके महाकवि स्वयम्भू[1] (लगभग ७७५–७९५) ने भी विमलार्यका एक प्राचीन कविके रूपमें स्मरण किया है। रविषेणका भी स्मरण किया है किन्तु विमलके पश्चाद् सम्भव है कि जिस प्रकार स्वयम्भूकी रामायण विमलके पउमचरियंपर आधारित है, उसी प्रकार उनका "रिट्ठणेमिचरिउ" (हरिवंश) भी विमलके हरिवंशपर आधारित हो और क्या आश्चर्य कि पुन्नाटके जिनसेनके हरिवंश (७८३ ई०) का आधार भी विमलार्यका ही ग्रन्थ हो।"

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैनकी उक्त वकालतका खण्डन पउमचरियंकी अंग्रेजी प्रस्तावनाके लेखक डॉ० व्ही० एम० कुलकर्णीने अच्छी तरह किया है। वे लिखते हैं कि "The word सीरि in the verse "सोउणं पुव्वगए नारायणसीरिचरियाइ" is misunderstood by Dr. J. P. Jain. The word सीरि is an equivalent of Sanskrit सीरि and stands for Baladeva or Haladhara, the elder brother of Narayana (or Vasudeva). Thus in the present content Narayaṇa and Siri stand for Lakṣmana and Rama. It is quite clear that he has entirely misunderstood the whole point. Here Vimala Suri points only to the trustworthiness of the source of his Paumacariya. His statement that Svayambhu pays[2] homage first to विमलसूरि (as an ancient poet) and then to रविषेण is open to doubt. The name विमलसूरि is nowhere mentioned in the passage concerned. If he has in mind the identity of विमलसूरि and कीर्तिधर the अनुत्तरवाग्मिन् he should have made the point explicit and given his reasons for the identification"

स्व० पं० प्रेमीने जिस समय (सन् १९४२ के लगभग) विमलसूरिके हरिवंश कर्तृत्वकी सम्भावना जिस उपरिनिर्दिष्ट गाथाके आधारसे की थी उन दिनों मुनि जिनविजयजी द्वारा कुवलयमालाके सम्पादन और प्रकाशनका उपक्रम चल रहा था। मुनिजीके समक्ष सन् १९४२ के मध्य तक कुवलयमालाकी कागजपर लिखी एकमात्र हस्तलिखित प्रति थी जिसका समय १५वीं शताब्दीके लगभग माना गया है। उस प्रतिमें प्रस्तावनाकी अनेक गाथाओं (२७–४४ तक) में उद्योतनसूरिने अनेक जैन (श्वेता०–दिग०) और जैनेतर कवियों और उनकी कृतियोंका आदर पूर्वक स्मरण किया है। सन् १९४२ से पूर्व उनमेंसे कुछ कवियों और रचनाओंपर विद्वानोंने विचार भी किया है। यहाँ वह सब देना सम्भव नहीं। केवल उन दो गाथाओंपर विचार किया जावेगा जिनसे कि विमलसूरिके हरिवंश कर्तृत्वकी सम्भावना की गई है। एक गाथा, जिसकी संख्या ३६ बतलायी गई है, द्वारा कहा गया है कि "विमलांकने जैसा विमल अर्थ प्राप्त किया वैसा कौन पायेगा, उसकी प्राकृत रससे सरस मानों अमृतमयी हो। इसमें विमलांक पद द्वारा पउमचरियंका स्मरण प्रतीत होता है।' इसके बादकी गाथामें—

(तिपुरिसचरियपसिद्धो सुपुरुषचरिएण पायडो लोए। सो जयइ देवगुत्तो वंसे गुत्ताण रायरिसी)

राजर्षि देवगुप्तको सुपुरुषचरितके कर्ताके रूपमें स्मरण किया गया है। इन देवगुप्तका कुवलयमालामें दो स्थानों पर उल्लेख किया गया है और इन्हें हूण नरेश तोरमाणका गुरु माना गया है। इसके बाद वह

---

१. डॉ० हरि० चु० भयाणीने स्वयम्भूका समय दशवीं शताब्दी बताया है।

२. पुणु पहवें संसाराराएं, कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं।
पुणु रविसेणायरियपसाएं, बुहिए अवगाहिय कइराएं॥ (पउमचरिउ, १।८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा "बुहयणसहस्सदयियं" आदि आती है। स्व० प्रेमीजीने इसका अर्थ किया है "मैं हजारों बुधजनों को प्रिय हरिवंशोत्पत्तिकारक प्रथम वन्दनीय और विमलपद हरिवंश की वन्दना करता हूँ"। इसके बाद ही वे अनुमान करते हैं कि इस गाथामें जो विशेषण दिये गये हैं वे हरिवंश और विमल पद (विमलसूरिके चरण अथवा विमल हैं पद जिसके ऐसा ग्रन्थ) दोनों पर घटित होते हैं और निष्कर्ष निकाल बैठते हैं कि विमलसूरि कृत एक हरिवंश काव्य है। जो अभी तक अप्राप्य है।

उस प्रारंभिक स्थितिमें जब कि कुवलयमालाकी एकमात्र प्रति उपलब्ध थी, उक्त पाठको चुनौती देना संभव नहीं था पर उक्त गाथाकी स्थितिको देखते हुए अर्थ निकालनेकी संभावनाको चुनौती दी जा सकती थी। प्रस्तावनागत गाथाओंके क्रमको एक बार हम पुनः देखें तो सहज ही समझ सकते हैं कि विमलांकको स्मरण करने वाली गाथा (गा० ३६)के साथ "बुहयणसहस्सदयियं—हरिवंसं चेव विमलपदं" वाली गाथाका क्रम नहीं दिया गया। उन दोनोंके बीचमें राजर्षि देवगुप्त वाली गाथा आती है। यदि कुवलयमालाकारको हरिवंशचरियंके कर्ताके रूपमें विमलसूरि इष्ट थे तो विमलांकके क्रममें ही इस बातका उल्लेख होना था। इससे विमलपयंकी पुनरावृत्ति न करना पड़ता पर वैसा न कर उसका उल्लेख एक गाथाके बाद किया है। इस तरह अन्तरसे दी गई गाथामें "हरिवंश चेव विमलपयं"से विमलसूरिकृत हरिवंशका अर्थ निकालना उचित नहीं। यह निष्कर्ष क्रमिक उल्लेखसे ही संभव था न कि व्यतिक्रम द्वारा। व्यतिक्रम द्वारा उल्लेखसे तो यह सिद्ध होता है कि हरिवंशचरियं विमलसूरिकी कृति नहीं, किसी औरकी है।

गाथाके अर्थको खींच-तानकर की गई संभावनाने कालान्तरमें कैसे तिलका ताड़ रूप धारण कर लिया था यह हम देख चुके हैं। और उससे चल पड़ी अन्ध परम्पराका निराकरण समय रहते होना चाहिये।

सौभाग्यसे सन् १९४२के अन्तमें कुवलयमालाकी एक अन्य प्रति जैसलमेरके बृहद् भण्डारसे मुनि जिनविजयजी को ताड़पत्रपर लिखी मिली जिसका लेखनकाल सं० ११३९ था। पूर्व कागजवाली १५वीं शता०की प्रतिके आधारपर डॉ० उपाध्येने कुवलयमालाका एक प्रामाणिक संस्करण तैयार किया जिसका मुद्रण कार्य सन् १९५०—५१से प्रारंभ हो १९५९में प्रथम भाग मूलकथा ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित हुआ। डॉ० उपाध्येने कागज पर लिखी प्रतिसे ताड़पत्रीय प्रतिको कई कारणोंसे अधिक प्रामाणिक माना हैं, और प्रस्तावना गत "बुहजन सहस्सदयियं" गाथाके 'हरिवंसं चेव विमलपयं'की जगह ताड़पत्रीय प्रतिके आधारपर "हरिवरिसं चेव विमलपयं" पाठ निर्धारित किया है। डॉ० उपाध्येने "हरिवंसं चेव" पदको पूर्व चरणके पद (हरिवंसुप्पत्तिकारकं)की पुनरावृत्तिके कारण अर्थमें बाधा उपस्थित करने वाला होनेसे त्याज्य बतलाया है और प्राचीन प्रतिके पाठको मान्यकर उक्त गाथाका अर्थ किया है—मैं सहस्र बुधजनके प्रिय तथा हरिवंशोत्पत्तिके प्रथम कारक, यथार्थमें पूज्य (वन्द्यमपि) हरिवर्षको उनके विमल पदों (अभिव्यक्ति)के लिए वन्दना करता हूँ। इससे तो विमलसूरिका हरिवंश कर्तृत्व एकदम निरस्त्र हो जाता है। डॉ० उपाध्येने कुवलयमाला द्वितीय भागके टिप्पणोंमें[1] लिखा है कि उन्होंने इस सम्बन्धमें पं० प्रेमीजीसे उनके जीवनकालमें ही बात की थी और वे उक्त संभावनाको बदलनेके पक्षमें थे परन्तु १९५६में प्रकाशित जैन साहित्य और इतिहासके द्वितीय संस्करणमें अपने वार्धक्यके कारण वे वैसा न कर सके। डॉ० उपाध्येने संभवतः १९५३के पूर्व उनसे यह बात की होगी क्यों कि तब तक कुवलयमालाके प्रारंभिक फर्मे छप चुके थे। उक्त द्वितीय संस्करणमें डॉ० उपाध्येने अपनी अंग्रेजी प्रस्तावना लिखी है पर आश्चर्य कि वे उक्त संभावनाका वहाँ कुछ खण्डन भी नहीं कर सके।

कुवलयमालाके प्रथम भागके प्रकाशित हो जानेके बाद भी कुछ विद्वानोंने अपनी विद्वत्तापूर्ण प्रस्ताव-

१. पृष्ठ १२६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाओंमें गतानुगतिकताका ही परिचय दिया है (जैसे डॉ० व्ही० एम० कुलकर्णीने पदुम चरियंकी अंग्रेजी प्रस्तावना पृ० १७-१८में और पं० अमृतलाल भोजकने चउप्पन्नपुरिस चरियंकी प्रस्तावना पृ० ४६७ में) और उक्त संभावनाकी बीन बजायी है।

इस तरह विचार करनेसे विमलसूरिका हरिवंश कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता। वल्कि हरिवंशके उल्लिखित कर्ता एक हरिवर्ष ही सिद्ध होते हैं।

उद्योतनसूरि द्वारा उल्लिखित पूर्ववर्ती कवियों और रचनाओंने कुवलयमालापर अपना प्रभाव डाला था, इस बातका दिग्दर्शन डॉ० उपाध्येने 'Kuvalayamala influenced by earlier works'—प्रकरणमें[1] दिखाया है उसमें उनने परवर्ती रचना तरंगलोलासे मिलानकर उसकी आधारभूत "तरंगवती कथाका" प्रभाव भी दिखाया है तथा बाणकी 'कादम्बरी', विमूलसूरिके "पदुमचरियं" जटिलके "वरांग चरित" तथा हरिभद्रसूरि कृत "समरादित्य कथा" का प्रभाव कुवलयमालापर दिखाया है। यदि हरिवर्ष कृत 'हरिवंश चरियं" उद्योतन सूरिके समयमें विद्यमान था तो उसका भी प्रभाव कुवलयमालापर और कुवलयमालाके रचना क्षेत्र जालौरके पड़ौस बढ़वानामें ५ वर्ष बाद रचित जिनसेनके हरिवंशपुराणपर भी अवश्य पड़ा होगा। कुवलयमालापर उस प्रभावकी परवर्ती रचना जिनसेनके हरिवंशसे कतिपय अंशों या विवरणोंको मिलान कर यदि दिखाया जा सके तो हरिवर्षका अनुपलब्ध हरिवंश कैसा क्या था यह अनुमान लयाया जा सकता है और जिनसेनका मूल क्या था इसपर प्रकाश पड़ सकता है। दिग० सम्प्रदाय मान्य जिनसेन रचित हरिवंश पुराण एक विशिष्ट कृति है। इसमें प्रतिकूल कुछ बातें दी गई हैं जैसे महावीरके विवाह[2] का संकेत, नारदकी मुक्ति तथा सम्यग्दृष्टि कृष्ण द्वारा लोकमें अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिये मिथ्या मूर्तिके निर्माणकी प्रेरणा। इसलिए इसके मूलका पता लगाना आवश्यक है। कुवलयमालामें उल्लिखित हरिवर्ष कृत हरिवंश संस्कृत और प्राकृत या किसी भाषामें हो सकता है क्यों कि उद्योतनसूरिने संस्कृत और प्राकृतके कवियोंका समान भावसे स्मरण किया है। इसलिये उसे प्राकृतकी रचना होना आवश्यक नहीं है।

•

१. पृष्ठ—८६-९१।

२. The tradition of Mahavir not having married is found in the स्थानांग समवायांग and भगवती texts the other tradition of his having married is well known since the days of kalpasutra.
D.D.M. स्थानांग अने सूत्रकृतांग p. 330.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org